शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

# सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों की मूल संवेदना

प्राप्तिः 03.03.2024
स्वीकृतः 17.03.2024

**डॉ० शुभ्रा ज्योति**
एसोसिएट प्रोफेसर
आर०एस० एस०पी०जी० कॉलेज
पिलखुवा, हापुड
ईमेलः *shubhrajyoti.rathi@gmail.com*

2

सियारामशरण गुप्त का जन्म 4 सितंबर 1895 को झांसी के चिरगांव में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत घर में ही गुजराती, अंग्रेजी व उर्दू भाषाएं सीखीं। उनकी भाषा–शैली भी घर के वैष्णव संस्कारों व गांधीवाद से प्रभावित थी। वह मूलतः तो कवि हैं किंतु उन्होंने गद्य की अन्य विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई। अपने अग्रज मैथिलीशरण गुप्त की काव्य कला व युगबोध को उन्होंने यथावत अपनाया। सन् 1929 में वे महात्मा गांधी और कस्तूरबा के संपर्क में आए। उन पर गांधीवाद का विषेश प्रभाव रहा इसलिए उनकी रचनाओं में समता, करुणा, सत्य, अहिंसा की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। हिंदी साहित्य में उन्हें एक कवि के रूप में विषेश प्रसिद्धि मिली किंतु वे एक मूर्धन्य कथाकार के रूप में भी साहित्य में अपना स्थान बनाने में सफल रहे। उन्होंने मात्र तीन उपन्यास लिखे– 'गोद', 'अंतिम आकांक्षा' और 'नारी'। कलेवर की दृष्टि से ये लंबी कहानी ही प्रतीत होते हैं। वे स्वयं भी मानते थे कि उपन्यास रचना के पथ से उनका परिचय नहीं है। ''लेखक ने स्वीकार किया है कि उपन्यास रचना का पथ उनके लिए अपरिचित है। मार्ग में कहीं भटक जाने पर 'भैया' का पुण्य संकेत उन्हें उचित मार्ग दिखा देगा। इसी विश्वास के साथ लेखक आगे बढ़ता है।''[1]

'गोद' सियाराम शरण जी का प्रारंभिक उपन्यास है। इसका प्रथम प्रकाशन 1932 ईस्वी में हुआ। इसमें हमारे सामाजिक जीवन की छोटी सी कहानी है। इसके केंद्र में नारी समस्या है। ''हिंदू समाज में तनिक से संदेह के कारण ही नारी को पतित मान लिया जाता है इसी अन्याय के विरुद्ध इस उपन्यास में स्वर उठाया गया है।''[2]

इसकी मुख्य पात्र किशोरी नामक एक लड़की है जो विधवा कौशल्या की पुत्री है। उसका विवाह शोभाराम से तय हुआ है जो दयाराम का छोटा भाई है। कुंभ के मेले में किशोरी गुम हो जाती है और उसे एक रात नारी शिविर में रहना पड़ता है। सुबह होने पर उसे उसकी मां को सौंप दिया जाता है। इस घटना की खबर सारे गांव में फैल जाती है। दयाराम अब अपने भाई का विवाह किशोरी से करने के लिए तैयार नहीं है। वह गंगादीन तिवारी से कहते हैं ''नहीं तिवारी जी ––– अच्छी हो या बुरी, जिस लड़की की ऐसी बुराई फैल चुकी है, हम भी उसे अपनी बहू कैसे बना सकते हैं? आज ही मैं उन लोगों से यह बात कहला दूंगा। वे अपना दूसरा प्रबंध करें।''[3] इस प्रकार सगाई तोड़ दी जाती है। इस घटना से कौशल्या को बहुत आघात पहुंचता है। वह इसका विरोध भी करना चाहती है किंतु समाज के भय से शांत रहती है। किशोरी भी उसे रोकती हैं ''मैंने कह दिया यदि तुम किसी से कुछ कहने जाओगी तो मैं पत्थर पर सर पटक कर मर जाऊंगी।''[4] क्षोभ व पीड़ा से कौशल्या का

हृदय छलनी हो गया। वह अपने ही कलेजे के टुकड़े से कह उठी ''मर जा अभागी मर जा! उस दिन भीड़ में वहीं कुचल कर मर जाती तो यह दिन न देखना पड़ता।''[5]

कौशल्या समाज से लड़ने में स्वयं को असमर्थ पाकर अपनी फूल सी बेटी का संबंध एक गंजेड़ी से तय कर देती है, जो किशोरी से उम्र में बहुत बड़ा है। शोभाराम का विवाह भी एक संपन्न परिवार में तय कर दिया जाता है। इस सारे घटनाक्रम के बीच एक ऐसा चरित्र सामने आता है जो समाज की दकियानूसी प्रवृत्ति का विरोध करने का प्रयास करती है, इसका नाम है– सोना, जो गंगादीन तिवारी की पुत्री है। सोना स्वयं एक बाल विधवा है। वह भी समाज के दंश से पीड़ित है। उसके पिता दकियानूसी विचारों के व्यक्ति हैं। वे दयाराम को किशोरी और शोभाराम की सगाई तोड़ने के लिए उकसाता है। सोना पिता से कहती है ''बप्पा यह तो बुरी बात है यदि शोभू का विवाह दूसरी जगह हो गया तो किशोरी को जन्म भर का कलंक लग जाएगा। ———— तुम दयाराम दादा के पास जाकर ऐसा करने से रोक दो।''[6] वह इस संबंध को फिर से कराने का हर संभव प्रयत्न करती है। शोभाराम बहुत समझदार है। सोना उसे बताती है ''किशोरी जैसी लच्छमी लड़की राजाओं के घर में भी दुर्लभ है। वह तुम्हारे घर की बहू बनती तो घर सच में स्वर्ग हो जाता। तुच्छ धन के लोभ में, झूठे अपवाद की आड़ में तुमने सजीव लक्ष्मी को ठुकरा दिया है। अब वह जिस गंजेडी के हाथ में पड़ रही है, न जाने वहां उसका क्या होगा?''[7] यह सुनकर शोभाराम व्यथित हो जाता है। वह परिवार की इच्छा के विरुद्ध किशोरी से विवाह कर लेता है। अंत में उसके भाई दयाराम व भाभी पार्वती भी इस संबंधा से प्रसन्न होते हैं। दयाराम अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहता है ''भूल तो मुझसे भी हो गई। मुझसे बचकर तू सीधा अपनी भौजी के पास जा रहा था परंतु उसकी गोद तो बहू ने आकर भर दी, मेरी खाली थी सो तू भर दे।''[8]

इस प्रकार उपन्यास का अंत सुखद होता है। गुप्त जी भारतीय समाज के ताने–बाने से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने उपन्यास के पात्रों को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। समाज किस तरह व्यक्ति को प्रभावित करता है किंतु समस्या का समाधान भी समाज द्वारा ही हो सकता है, यह संदेश इस उपन्यास के माध्यम से वे देना चाहते हैं। संपूर्ण उपन्यास ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ है।

सियारामशरण गुप्त जी का दूसरा उपन्यास है, 'अंतिम आकांक्षा'। यह 1934 में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की कथावस्तु अत्यंत रोचक है। इसका नायक रामलाल नामक एक स्वामिभक्त नौकर है, जिसे सब रमला कहकर पुकारते हैं। यह दलित जाति का है। घर के सभी सदस्य उसके प्रति अत्यंत स्नेह का भाव रखते हैं किंतु कुछ लोग उससे ईर्ष्या भी करते हैं।

रामलाल के मालिक की बेटी मुन्नी का विवाह है, तभी डाकुओं का एक दल हमला कर देता है किंतु रामलाल अपनी स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए न केवल डाकुओं से संघर्ष करता है अपितु एक डाकू को तो मार भी डालता है। डाकू वहां से भाग जाते हैं किंतु जाते–जाते अपने उस मरे हुए साथी का सिर काट कर ले जाते हैं। किंतु रामलाल को अपनी इस बहादुरी का कोई पुरस्कार नहीं मिलता अपित इसके लिए उसे प्रायश्चित करने को कहा जाता है क्योंकि उसने जिस डाकू को मार गिराया था वह जनेऊ धारण किए हुए था इसलिए लोग उसे ब्राहमण समझते हैं। उसके मालिक

हरिनाथ के यहां आई हुई बरात तब तक भोजन के लिए तैयार नहीं होती जब तक रामलाल को हटा नहीं दिया जाता। बारात में से एक सज्जन अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं ''तो सुनो, रामलाल से जो आदमी मर गया, उसके गले में जनेऊ था। अब ब्रह्म हत्या का पाप उसे लगा कि नहीं? उसे गंगा जी जाकर प्रायश्चित करना चाहिए। इसलिए घर जाकर सबसे पहले उसे हटा दो, तभी हम भोजन में शामिल हो सकेंगे।''[9] इस तुगलकी फरमान के बाद रामलाल को घर से निकाल दिया जाता है। भारी मन से रामलाल जाने के लिए तैयार हो जाता है किंतु जाते हुए भी मुन्नी के प्रति उसका हृदय स्नेह से भरा रहता है। वह कहता है ''बिन्नी को बुला दो, उसके पैर छूता जाऊं। अब घर के भीतर मेरा जाना ठीक नहीं।''[10] जाते हुए मुन्नी के हाथ में दो रूपए देकर जब वह जाता है तो यह दृष्य हृदय को द्रवित कर देता है। रामलाल चला जाता है कुछ समय बाद उसका विवाह हो जाता है किंतु उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली जाती है।

उधर मुन्नी भी अपनी ससुराल में बहुत प्रसन्न नहीं थी। मॉ के बीमार होने पर उसे बुलाया जाता है किंतु ससुराल वाले उसे नहीं भेजते। लेखक समाज में विवाहित लड़की की दुर्दशा का वर्णन करते हैं। विवाहोपरांत वह अपनी इच्छा से अपनी मरणासन्न मां को देखने भी नहीं आ सकती। ''रोग वृद्धि के साथ–साथ मुन्नी को देखने के लिए मां का जी छटपटाने लगा। उसे ले आने के लिए गाड़ी भेजी गई। उन लोगों की दी हुई अवधि से पहले ही हमने उसे बुलाना चाहा, इस बात का दंड जो कुछ हो सकता था, वही हुआ। रीती गाड़ी वापस लौट आई। निःस्सहाय बहन के हृदय की बात सोच कर हम सब की छाती फटने लगी।''[11] मॉ की मृत्यु हो जाती है। क्रूर समाज का सच हम सबको सोचने पर मजबूर कर देता है ''पुराने समय में कुछ लोग पैदा होते ही कन्या को तुरंत मार डालते थे। आज मुझे मालूम हुआ कि हम लोगों की अपेक्षा वे लोग अधिक दयाशील थे। वे लोग कन्या जाति का हनन एक बार ही करते थे किंतु हमारी सदयता ऐसी है जो हमारे द्वारा जीवन भर उसका हनन करती और कराती रहती है।''[12]

उधर रामलाल पर हत्या का मुकदमा चलता है। अदालत में उसके विरुद्ध निर्णय दिया जाता है। यहां पर सियाराम शरण गुप्त जी कानून व्यवस्था पर भी व्यंग्य करते हैं– ''हमारी अदालतें हैं आंखों ही आंखों की– चक्षुश्रवा!''[13] रामलाल और अन्य लोगों ने अदालत में टेक सिंह के विरुद्ध जो कुछ कहा था, वह कान का प्रमाण था आंख का नहीं। इसलिए रामलाल को जेल जाना पड़ता है। उसे घोर कष्ट होता है और अंत में निमोनिया से उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने अंतिम समय में वह अपनी अंतिम आकांक्षा प्रकट करता हुआ कहता है ''भैया, भगवान से मेरी प्रार्थना है कि अपने ही गांव में मैं झट से फिर जन्म लूं, दूसरे जन्म में मैं फिर तुम्हारी चाकरी में पहुंचूं। तुमने मेरे लिए जो कुछ किया उससे मैं उरिन नहीं हो सकता। इस बार मेरी यह भौजी ही मेरी मॉ बनेंगी। जिस तरह तुम्हारे साथ खेला कूदा, इस तरह लल्लू के साथ खेलूँ कूदूँगा। बचपन का वह सुख मुझे फिर से तुम्हारे यहॉ मिले, मरते समय आज भगवान से मैं यही चाहता हूँ।''[14]

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें जमीदारों द्वारा किए गए शोषण का वर्णन किया गया है तथा साथ ही साथ मुन्नी के माध्यम से नारी जाति की दुर्दशा को भी दर्शाया गया है। जाति समस्या को भी उठाया गया है। तत्कालीन समाज में जातिगत ऊॅच–नीच किस प्रकार

व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती थी, इसका चित्रण रामलाल के माध्यम से गुप्त जी ने किया है। उपन्यास का कारूणिक अंत होता है। रामलाल के जीवन को नर्क बनाने में समाज ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। गुप्त जी इसी यथार्थ बोध से अपने पाठक को परिचित कराने का प्रयत्न करते हुए प्रतीत होते हैं।

तीसरा उपन्यास 'नारी' है, जो 1937 में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में गुप्त जी ने कई सामाजिक समस्याओं को उठाया है, किंतु नारी समस्या इसमें सर्वाधिक प्रमुख है। ''गुप्त जी के तीनों उपन्यासों में 'नारी' ने सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की और वही सबसे अधिक लोकप्रिय हो सका। उपन्यास कला और भाव उभय पक्षों की दृष्टि से लेखक की सर्वोत्कृष्ट रचना है।———— मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में अबला जीवन पर जो उक्ति कही है, वही इस उपन्यास में चित्रित हुई है। हिंदू नारी का अदम्य स्नेह, आत्म–त्याग और करुणा सभी कुछ इसमें कलात्मक रूप से व्यंजित हुए हैं।''[15] इसकी मुख्य पात्र जमुना है जिसका पति वृंदावन काम के सिलसिले में कलकत्ता चला गया है। कुछ दिनों तक तो पत्राचार के माध्यम से उसका समाचार मिलता रहा किंतु फिर पत्र आने बंद हो गए। पति के बिना जमुना स्वयं को असहाय महसूस करती है। जमुना के ससुर उसे अपना बेटा मानते थे। कुछ समय तक उनका सहारा रहा किंतु उनका भी देहांत हो जाता है, इस प्रकार जमुना अकेली पड़ जाती है। अपने अंतिम समय में वे जमुना से कहते हैं ''वह नहीं आया तो न आने दे उसको। मेरा सच्चा बेटा तू ही निकली।——— मेरा तो बुलावा आ गया, लड़के को देखना। तेरा पुण्य तुझे सुखी रखे।''[16]

जमुना का एक बेटा है जिसका नाम है हल्ली। वह उसे मदरसे में पढ़ा रही है। वही उसका सहारा है। जब वह कुछ सँभलती है तो उसे ज्ञात होता है कि उसके ऊपर महाजन का ऋण है। जमुना असहाय तो है ही, ऋणग्रस्त भी है। महाजन का ऋण द्रौपदी के चीर की भांति होता है जो कभी समाप्त नहीं होता। उसे पता चलता है ''उस घर में इस ऋण का आगमन पहले–पहल नवजात शिशु की ही तरह विषेश आनंदोत्सव के साथ हुआ था। बच्चे निर्दिष्ट सीमा तक बढ़कर रुक जाते हैं परंतु ऋण को किसी सीमा का बंधन कहॉं। वह बढ़ता जाता है, बढ़ता ही जाता है। यहां तक कि घर का छप्पर और दीवार भी उसका बढना नहीं रोक सकती।''[17]

लंबे समय तक जीवन से संघर्ष करते हुए जमुना के जीवन में अजीत नामक व्यक्ति आता है, वह जमुना से विवाह करना चाहता है लेकिन वह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती। बाद में जब वह तैयार हो जाती है, तो अजीत मना कर देता है। उसका पति वृंदा लौटकर आता भी है किंतु महाजन द्वारा उसे जमुना और अजीत के विवाह की झूठी खबर मिलती है। यह सुनकर वह वापस कलकत्ता चला जाता है। जमुना अपने बेटे के साथ जीवन की विपत्तियों को सहने के लिए तैयार हो जाती है। तभी उसे पता चलता है कि एक–दो दिन में उसे खेत और कुएं से बेदखल कर दिया जाएगा। ''जमुना के लिए इस समाचार का कोई महत्व न था। भादों की रात में कहीं दो एक बचे–खुचे तारे भी किसी बादल से ढक जाएं या टिमटिमाते रहें, इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता।''[18] इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से गुप्त जी ने समाज में अकेली नारी की असहाय दशा के साथ–साथ जमीदार व महाजनों द्वारा गरीब लोगों के शोषण का भी वर्णन किया है।

उपन्यास के अंत में गुप्त जी कहते हैं ''हल्ली का हाथ थाम कर वह चल खड़ी हुई। आसमान में बादल आकर छा गए थे। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा। कहीं कुछ दीख नहीं पड़ता था। फिर भी लड़के का हाथ थाम कर वह आगे बढ़ी जा रही थी। कुछ अकेले आज ही नहीं जा रही थी। वह चिरंतन नारी युग–युग के अंधकार में, उसे तुच्छ करके चिरकाल से इसी तरह आगे बढ़ी जा रही है, — दुख और विपत्ति के अँधियारे पथ को इसी तरह पद–दलित करके! उसे कोई भय नहीं है, कोई चिंता नहीं है।''[19]

तीनों ही उपन्यासों में गुप्त जी जटिलता से दूर रहते हैं। जो लोग चाहते हैं कि उपन्यास में किसी समस्या का गहराई से विश्लेषण किया जाए, उन्हें यहां निराशा ही हाथ लगेगी। ''गुप्त जी उन उपन्यासकारों में से नहीं है जिन्हें हृदय के घावों के खुरंट उखाड़ लाली देखने में मजा आता है। वे मानों इस बात से डरते हैं कि घाव को खुला छोड़ने से डर है कि उन्हें हवा लग जाए और हवा में तैरते हुए कीटाणु उनमें प्रवेश कर कहीं उसे और भी विषाक्त ना बना दें।''[20] थोड़ी बहुत पेचीदगी 'नारी' के कथानक में महसूस की जा सकती है क्योंकि इसमें गुप्त जी ने नारी जीवन की जटिलताओं का वर्णन किया है। तीनों ही उपन्यासों का अंत कलात्मक ढंग से होता है। 'नारी' उपन्यास में एक नई रोशनी की किरण दिखाई देती है किंतु गुप्त जी की वैष्णव निष्ठा व गांधीवादी चिंतन उस पर हावी हो जाता है। संपूर्ण विवेचना से स्पष्ट है कि ''तीनों उपन्यासों की आधार भूमि गांव हैं। सत्य–असत्य और पाप–पुण्य से युक्त जीवन का यथार्थपरक चित्रण गुप्त जी के गद्य लेखन की विषेशता है। उनके हृदय में एक आदर्श समाज बसता है। युग के यथार्थ को उसी ओर मोड़ा गया है।''[21] तीनों ही उपन्यास उनके मूल भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ हैं। अछूतोद्धार, अहिंसा के प्रति आस्था, नारी की करुण कहानी और विवाह की मर्यादा आदि उनके उपन्यासों के मूल विषय हैं। इस प्रकार गुप्त जी एक कवि होते हुए भी उपन्यासों में अपनी मुख्य भावनाओं को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ रहे हैं। उनके ''उपन्यासों में एक ऐसे प्रकार की मानवीयता है, जो पाठक को अभिभूत कर देती है। मर्मस्पर्शिता उनका प्रधान गुण है।''[22]

**संदर्भ**

1. शुक्ल, ललित. संपादक. सियारामशरण गुप्त रचनावली. खंड 3 प्रस्तावना. किताब घरः नई दिल्ली. पृष्ठ 5.
2. उपाध्याय, प्रोफेसर देवराज. सियारामशरण गुप्त के उपन्यास. पृष्ठ 91.
3. शुक्ल, ललित. संपादक. सियारामशरण गुप्त रचनावली. खंड 3. किताब घरः नई दिल्ली. पृष्ठ 16.
4. वही. पृष्ठ 22.
5. वही. पृष्ठ 22.
6. वही. पृष्ठ 27.
7. वही. पृष्ठ 41.
8. वही. पृष्ठ 68.
9. वही. पृष्ठ 96.

10. वही. पृष्ठ 97.
11. वही. पृष्ठ 113.
12. वही. पृष्ठ 113.
13. वही. पृष्ठ 115.
14. वही. पृष्ठ 135.
15. अग्रवाल, विद्याभूषण. सियारामशरण गुप्त के ग्रंथ. पृष्ठ 59.
16. शुक्ल, ललित. संपादक. सियारामशरण गुप्त रचनावली. खंड 3. किताब घरः नई दिल्ली. पृष्ठ 141.
17. वही. पृष्ठ 142.
18. वही. पृष्ठ 226.
19. वही. पृष्ठ 230.
20. उपाध्याय, प्रोफेसर देवराज. सियारामषरण गुप्त के उपन्यास. पृष्ठ 96.
21, शुक्ल, ललित. संपादक. सियारामशरण गुप्त रचनावली. खंड 3 प्रस्तावना. किताब घरः नई दिल्ली. पृष्ठ 6.
22, अग्रवाल, विद्याभूषण. सियारामशरण गुप्त के ग्रंथ. पृष्ठ 61.